जीवन - ज्योति माला

मेघनाद साहा

जीवन - ज्योति माला

मेघनाद साहा

सन्तराम वत्स्य

ज्ञान भारती, दिल्ली

मूल्य : एक रुपया पचास पैसे
प्रथम संस्करण : १९७२
प्रकाशक : ज्ञान भारती
४/१४, रूपनगर, दिल्ली-७
मुद्रक : पुरी प्रिंटर्स, नई दिल्ली-५

दो शब्द

"विज्ञान की व्यक्तिगत शाखाओं और उनके विकास में योग देने वाले मुख्य वैज्ञानिकों की जीवनियों का अध्ययन विज्ञान के वास्तविक अर्थ और उसकी आत्मा को ठीक तरह समझने के लिए जरूरी है। उसके पढ़ने से हमें जो स्फुरणा प्राप्त होती है, वह प्रायः विज्ञान पर लिखे गए अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण औपचारिक ग्रन्थों से अधिक होती है।"

नोबेल पुरस्कार विजेता जगत्-प्रसिद्ध महान् वैज्ञानिक श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमन के ये वाक्य ही इस 'जीवन-ज्योतिमाला' की प्रेरणा हैं।

'जीवन-ज्योति-माला' की इस प्रथम लड़ी में देश-विदेश के महान् वैज्ञानिकों की जीवनियां प्रस्तुत की जा रही हैं।

वैज्ञानिक सबसे अधिक जिज्ञासु लोग होते हैं। उनके मन में अपने चारों ओर की वस्तुओं के बारे में तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं। वे उन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए अनेक पुस्तकें पढ़ते हैं, उन पुस्तकों का बारीकी से निरीक्षण और परीक्षण करते हैं। 'क्यों' और 'कैसे' ?' का उत्तर ही हमारी सारी वैज्ञानिक खोजें हैं।

आज के युग को इन वैज्ञानिक खोजों के कारण ही 'विज्ञान का युग' कहा जाता है। इन खोजों के कारण ही आज हम अनेक सुख-सुविधाओं का उपयोग कर रहे हैं। कुछ दशक पूर्व असम्भव लगने वाली बातें आज इतनी साधारण हो गई हैं कि उनकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। रेल-मोटर, हवाई जहाज, बिजली, कैमरा, एक्सरे, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, ग्रामोफोन, परमाणु बम और अन्तरिक्ष यान आज हमें आश्चर्यचकित नहीं करते। पर यदि इन खोजों की कहानी आप पढ़ें तो अवश्य चकित रह जाएं। तब आपको यह भी पता चल जाएगा कि इन खोजों के पीछे अनेक वैज्ञानिकों की वर्षों की सतत्

साधना है। किसी वैज्ञानिक के मन में एक बात आयी और उसने परीक्षणों तथा प्रयोगों द्वारा उसका पता लगाना प्रारम्भ किया। उसी खोज को बाद के वैज्ञानिकों ने और आगे बढ़ाया और इस प्रकार अनेक वर्षों में वह कार्य पूरा हुआ। विज्ञान की एक-एक खोज में अनेक राष्ट्रों और युगों के व्यक्तियों का योग है।

ज्ञान का यह भण्डार पुस्तकों में हम सब को मिल सकता है, उससे लाभ उठाकर, हम नई खोजों और विज्ञान के नये चमत्कारों की दिशा में आगे से आगे बढ़ सकते हैं।

पुस्तकों में संचित ज्ञान का लाभ उठाकर, इसे सीढ़ी बनाकर नए आविष्कारों और खोजों तक पहुंचने वाला आगामी युग का वैज्ञानिक कौन होगा ? वह आप भी हो सकते हैं।

इन जीवनियों को पढ़कर यह स्पष्ट पता चल जायगा कि वैज्ञानिक खोजें संयोगमात्र या किसी चमत्कार पर आधारित न होकर वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम हैं। इन जीवनियों को पढ़कर जहां हमें विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक बातों का पता चलेगा, वहां उन गुणों से भी परिचय प्राप्त होगा, जिनके कारण वैज्ञानिक सफल हो सके।

विज्ञान के जिज्ञासुओं और छात्रों के लिए वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्रों का अध्ययन बड़े महत्त्व का है। कुछ शिक्षा शास्त्रियों का तो यह मत है कि विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्रों द्वारा ही शुरू होनी चाहिए।

पाठकों की रुचि विज्ञान में बढ़े, वे जीवन में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाएं और निरीक्षण और परीक्षण के अभ्यस्त बनें, इस आशा और विश्वास के साथ मैं इसे प्रस्तुत कर रहा हूं।

—सन्तराम वत्स्य

यदि हम इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि जीवन में उन्नति करने के लिए सुख-सुविधाएं नहीं, हमारा चरित्र ही महत्त्वपूर्ण कार्यकारी शक्ति है तो जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण ही बदल जाएगा और उन्नति की सीढ़ियां चढ़ना हमारे लिए सुगम हो जाएगा। सुख-सुविधाओं को महत्त्व देना, बहाने ढूंढना है। अपनी कमियों के लिए दूसरों को दोषी ठहराना है। परन्तु जब हम यह जान लेते हैं कि अपने गुणों के द्वारा ही हम उन्नति कर सकते हैं तो व्यर्थ की बातों से ध्यान हटाकर हम अपने कार्य में जुट जाते हैं और अथक श्रम और दृढ़ संकल्प द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए हमें उन्नति की चोटी पर पहुंचे हुए श्रेष्ठ पुरुषों के जीवनों का अध्ययन करना चाहिए। कैसी-कैसी कठिन परिस्थितियों में वे जीवन-पथ पर आगे ही आगे बढ़ते गए, यह जानने से हमें नई स्फूर्ति और नया उत्साह मिलेगा।

मेघनाद साहा का जन्म ६ अक्तूबर, १८९३ ई० को गांव श्योराताली, जिला ढाका (बंगाल) में हुआ था। ढाका जिला अब पूर्वी पाकिस्तान में चला गया है। चार बहन-भाई उनसे बड़े थे। वे माता-पिता की पांचवीं सन्तान थे।

मेघनाद के पिता श्री जगन्नाथ साहा की गाँव में परचून को छोटी-सी दुकान थी। इसी दुकान के सहारे, परिवार का भरण-पोषण होता था। दिन बड़ी तंगी से गुज़र रहे थे। मेघनाद की माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी बड़ी सुघड़ गृहिणी थीं और कम आय में ही जैसे-तैसे गृहस्थी को चला लेती थीं।

यह गाँव प्रत्येक दृष्टि से पिछड़ा हुआ था। गाँव के अधिकतर लोग खेती-बाड़ी करते थे। गाँव में एक प्राथमिक पाठशाला थी। सात मील दूर मिडिल स्कूल और तीस मील दूर ढाका में हाई स्कूल था। जो लोग अपना नाम भर लिख लेते थे, वे पढ़े-लिखे समझे जाते थे।

मेघनाद को प्राथमिक पाठशाला में भर्ती करा दिया गया। पिता चाहते थे कि थोड़ा-सा पढ़-लिखकर बेटा दुकान के काम में उनका हाथ बंटाने के योग्य हो जाएगा। ऐसी परिस्थिति में वे इससे अधिक

सोचते भी क्या ! वे स्वयं भी कुछ अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। घर-गृहस्थी की गाड़ी जैसे-तैसे चल रही थी । मिडिल स्कूल सात मील दूर था और वहां रखने का खर्च उठाने की हिम्मत उनमें थी नहीं ।

जिस दिन स्कूल में छुट्टी होती, मेघनाद को दुकान का छोटा-मोटा काम करना पड़ता । बालक मेघनाद का मन दुकान के काम में बिलकुल नही लगता पर अनमने ढंग से पिता जो कुछ काम बताते वह कर देता। हां, पढ़ाई-लिखाई में मेघनाद का मन खूब लगता। अध्यापक इस बालक की योग्यता से बड़े प्रभावित थे। इस होनहार बालक की प्रतिभा को इन अनुभवी अध्यापकों ने पहचान लिया था। प्राथमिक पाठशाला की पढ़ाई समाप्त होने पर अध्यापकों ने मेघनाद के पिता पर जोर डाला कि वे मेघनाद को आगे अवश्य पढ़ाएं। पर श्री जगन्नाथ साहा को लगा कि यह सम्भव नहीं होगा। गांव में या थोड़ी दूर कोई स्कूल होता तो बात बन भी सकती थी पर सात मील दूर के कस्बे में न तो घर से रोज आया-जाया जा सकता था और न ही वहाँ रखने का खर्च उठाने की हिम्मत थी।

मेघनाद के बड़े भाई जयनाथ हाई स्कूल में पढ़े थे। वे चाहते थे कि मेघनाद को आगे पढ़ाया जाए।

गांव से सात मील दूर सिभुलिया में मिडिल स्कूल था। पर प्रति दिन सात मील जाना और सात मील आना संभव नहीं था। इसलिए जयनाथ सिभुलिया गए और अपने परिचित डा० अनन्तकुमार दास से मेघनाद को अपने घर रखने की स्वीकृति ले आए। समस्या सुलझ गई। डा० अनन्तकुमार दास के घर पर रहकर मेघनाद ने मिडिल स्कूल में पढ़ना प्रारंभ कर दिया।

जब आठवीं कक्षा की परीक्षा हुई तो मेघनाद ढाका जिले में सर्वप्रथम आया। जिले का सर्वाधिक योग्य छात्र होने के कारण हाई स्कूल में पढ़ने के लिए सरकार की ओर से छात्रवृत्ति मिल गई। अब मेघनाद ने ढाका के कॉलिजियेट स्कूल में नाम लिखवाया। यह १९०५ ई० की बात है।

मेघनाद को छात्रवृत्ति तो मिल ही गई थी, स्कूल को फीस भी माफ हो गई। अब लगने लगा था कि मेघनाद की पढ़ाई निर्विघ्न चलती चलेगी पर एक नई कठिनाई आ खड़ी हुई और उसने मेघनाद का रास्ता रोक लिया।

इन्हीं दिनों भारत के विदेशी शासकों—अंग्रेज़ों ने बंगाल को दो भागों में बांटने का फैसला किया। इस फैसले के विरुद्ध जनता ने बड़ा ज़ोरदार आन्दोलन शुरू कर दिया। विदेशी शासन से स्वतंत्र होने की लड़ाई भी जोर पकड़ रही थी। विदेशी शासन और विदेशी वस्तुओं के विरुद्ध प्रचार जोरों पर था। स्वदेशी का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। बंगाल के तरुण छात्र और नवयुवक पूरे उत्साह से बंग-भंग का विरोध कर रहे थे। उन दिनों बंगाल में रेम्पफील्ड फुलर गवर्नर था। वह स्कूलों और कॉलेजों के दौरे पर निकला था ताकि इस दिनों-दिन बढ़ते हुए आन्दोलन से छात्रों को दूर रखा जा सके।

गवर्नर जब सिभुलिया के स्कूल में आया तो छात्रों ने बंग-भंग के विरोध-स्वरूप स्कूल में हड़ताल कर दी। मेघनाद भी हड़ताली छात्रों में था। दूसरे स्कूल-कॉलेजों में भी हड़तालें हुईं। हड़तालों में भाग लेने वाले बहुत से छात्रों के नाम काट दिए गए। मेघनाद साहा का नाम भी उसके स्कूल से काट दिया गया। यही नहीं, छात्रवृत्ति भी बन्द कर दी गई। यह देशभक्ति का दण्ड था। विदेशी सरकार को देश-भक्ति की भावना फूटी आंखों नहीं सुहाती थी। किसी

कवि ने ठीक ही कहा है : यातना से कब किसी की भावनाएं दब सकी हैं।

सरकार जिस काम को अपराध मानती थी, देश-भक्त जनता की दृष्टि में वही गुण था। ढाका के एक अन्य निजी स्कूल में जिसका नाम किशोरीलाल जुबली स्कूल था, मेघनाद साहा को प्रवेश मिल गया। इसी स्कूल के प्रबन्धकों ने मेघनाद को छात्रवृत्ति भी दे दी। पढ़ाई फिर चल पड़ी। इस स्कूल के अध्यापक भी मेघनाद की लगन, योग्यता और परिश्रम से प्रभावित हुए।

ढाका में ईसाई धर्म-प्रचारक बाइबिल की कक्षाएं चलाते थे। मेघनाद वहां जाकर बाइबिल पढ़ने लगे। ईसाई धर्म प्रचारकों का यह आयोजन लोगों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट करके, उन्हें ईसाई बनाने के लिए था। परन्तु मेघनाद साहा वहां धर्म-जिज्ञासा के कारण ही गए थे। इस संस्था ने बाइबिल ज्ञान की प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन किया तो मेघनाद बंगाल भर में सर्वप्रथम आए। इस प्रतियोगिता परीक्षा में स्कूलों के ही नहीं, कॉलेजों के छात्र भी सम्मिलित हुए थे। इसके लिए उन्हें एक सौ रुपए और बाइबिल की एक सुन्दर पुस्तक पुरस्कार में मिली।

१९०९ ई० में मैट्रिक परीक्षा में मेघनाद समूचे पूर्वी बंगाल में सर्वाधिक अंक लेकर सर्वप्रथम आए। अंग्रेज़ी, बंगला, संस्कृत और गणित में मेघनाद के अंकों का योग सर्वाधिक था।

इस स्कूल में बड़े विद्वान् शिक्षकों से विद्याध्ययन का अवसर मेघनाद को मिला था। सभी अपने-अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे। मेघनाद पर उनका स्नेह भी खूब था। सच तो यह है कि सब जगह गुणों का ही मान होता है।

अब मेघनाद ने ढाका कॉलेज में प्रवेश लिया। विज्ञान विषय के साथ मेघनाद ने जर्मन भाषा ली। बात यह थी कि उस समय तक जर्मनी देश में ही विज्ञान की सर्वाधिक उन्नति हुई थी। विज्ञान का अधिकतर मौलिक साहित्य जर्मन भाषा में ही उपलब्ध होता था। इसलिए विज्ञान का अध्ययन करने के लिए जर्मन भाषा सीखना एक प्रकार से आवश्यक था। एक कारण जर्मन पढ़ने का और भी था। भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान और गणित के साथ चौथे विषय के रूप में जर्मन भाषा से अधिक अंक मिल सकने की संभावना भी थी।

यहां भी उन्हें एक से एक योग्य अध्यापकों से पढ़ने

का अवसर मिला। प्राध्यापक नगेन्द्रनाथ सेन वीएना विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० करके इसी वर्ष आए थे। वे मेघनाद के रसायन के अध्यायक थे। उन्हीं से मेघनाद जर्मन भाषा भी पढ़ता था। श्री के० पी० वसु बीजगणित के ख्याति-प्राप्त लेखक और विद्वान् थे। वे गणित पढ़ाते थे।

प्रतिभावान्, परिश्रमी और विनयशील मेघनाद को इस कॉलेज में भी गुरुजनों का खूब स्नेह मिला। कॉलेज के प्रधानाचार्य भी मेघनाद से पुत्र की तरह स्नेह करते थे।

१९११ ई० में मेघनाद साहा ने प्रथम श्रेणी में इंटरमीडियेट परीक्षा उत्तीर्ण की। गणित और रसायन में मेघनाद ने प्रथम स्थान प्राप्त किया और पूरे प्रान्त में तीसरा स्थान।

ढाका में इंटरमीडियेट करने के पश्चात् मेघनाद ने बंगाल की राजधानी कलकत्ता में, प्रसिद्ध प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश किया। बी-एस० सी० ऑनर्स के लिए मेघनाद साहा ने गणित विषय लिया। इस समय अनेक प्रतिभाशाली छात्र उनके सहपाठी थे। इनमें से कई आगे चलकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक बने। प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता सत्येन्द्रनाथ बोस मेघनाद साहा के

सहपाठी थे। अन्य सहपाठियों में निखिलरंजन सेन, जे० सी० घोष, जे० एन० मुकर्जी के नाम उल्लेखनीय हैं। पी० सी० महल नबीस और एन० आर० धर भी उस समय प्रेसीडेंसी कॉलेज के छात्र थे, यद्यपि वे मेघनाद से अगली कक्षाओं में पढ़ रहे थे। सुभाषचन्द्र बोस भी उस समय उसी कॉलेज में पढ़ रहे थे।

ये तरुण छात्र इस दृष्टि से भी सौभाग्यशाली थे कि उस समय के देश के प्रतिभावान् विज्ञान के प्राध्यापक उनके शिक्षक थे। इनमें आचार्य जगदीश-चन्द्र वसु भौतिक विज्ञान के, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय रसायन विज्ञान के और श्री डी० एन० मल्लिक गणित के प्राध्यापक थे। ये अच्छे शिक्षक ही नहीं, महान् देशभक्त भी थे और अपने छात्रों को सदा देश-सेवा के लिए प्रेरित करते रहते थे। इन महान् वैज्ञानिकों के निकट सम्पर्क और पथ-प्रदर्शन में मेघनाद की विज्ञान-निष्ठा दिनोंदिन गहरी होती गई। अध्ययन के साथ-साथ अनुसन्धान में मेघनाद की रुचि बढ़ती गई। विज्ञान का अध्ययन मेघनाद के लिए जीविका का साधन नहीं, जीवन की साधना बन गया।

विज्ञान-साधना का जीवन-लक्ष्य, प्रतिभाशाली सह-पाठी और छात्रों के भविष्य में देश के भविष्य को प्रति-

फलित होता देखने के लिए व्यग्र, विद्यादान की ऋषि परम्परा में आस्थावान् प्राध्यापक—तीनों के संयोग से प्रेसीडेंसी कॉलेज में भावी भारत की विज्ञान प्रतिभा का पौधा सींचा जा रहा था।

मेघनाद साहा ने १९१३ ई० में प्रथम श्रेणी में बी० एस-सी० ऑनर्स परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। फिर उसी कॉलेज से १९१५ ई० में गणित विषय में एम० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण की। दोनों परीक्षाओं में उसने विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान प्राप्त किया। प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला छात्र था सत्येन बोस। बाद में गणित के ये दोनों प्रतिभाशाली छात्र ख्याति-प्राप्त भौतिकोविद् हुए। गणित और भौतिकी का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए गणितज्ञों का भौतिकीविद् बनना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।

कॉलेज की पढ़ाई समाप्त हुई। अब श्री मेघनाद के सामने कोई उपयुक्त काम खोजने की समस्या थी। घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। घर के लोग सोचते थे कि मेघनाद को पढ़ाई समाप्त करने पर कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जाएगी और तब घर की हालत भी सुधर जाएगी। श्री मेघनाद भी अच्छी तरह जानते थे कि एक दिन भी खाली बैठकर काम नहीं

चलेगा।

भारत सरकार में ऊंचे पद पर नौकरी प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता परीक्षा होती है। जो लोग चुने जाते उन्हें वित्त विभाग या पुलिस विभाग में नियुक्त किया जाता।

श्री मेघनाद साहा वित्त विभाग में नौकरी पाने के लिए प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होना चाहते थे, पर तत्कालीन विदेशी सरकार ने इस परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए उन्हें अनुमति तक नहीं दी। कारण बड़ा स्पष्ट था। मेघनाद साहा के विचार राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण थे। मिडिल स्कूल की पढ़ाई के दिनों में जब वे अभी बालक ही थे, उन्होंने बंग-भंग के विरुद्ध हड़ताल में भाग लिया था और स्कूल से निकाले गए थे। बाद में प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ते समय भी यद्यपि वे सक्रिय राजनीति में तो भाग नहीं लेते थे किन्तु सम्पर्क तो रखते ही थे।

इन दिनों स्वतंत्रता आन्दोलन का जोर था। इसकी दो दिशाएं थीं। एक ओर कांग्रेस के नेतृत्व में जनता को शान्तिपूर्ण आन्दोलनों के लिए तैयार किया जा रहा था, दूसरी ओर इस नीति में विश्वास न रखने वाले नवयुवक सशस्त्र क्रान्ति द्वारा अंग्रेज़ों को

देश से बाहर भगा देना चाहते थे। कलकत्ता इन क्रान्तिकारियों का गढ़ था। कॉलेज के छात्रों में भी इन लोगों का आना-जाना बराबर होता रहता था। स्वर्गीय डा० राजेन्द्रप्रसाद इसी कॉलेज के भूतपूर्व छात्र थे और यदा-कदा विशेष अवसरों पर आते रहते थे। श्री सुभाषचन्द्र बोस इन दिनों वहीं पढ़ रहे थे। क्रान्तिकारियों के नेता जतीन्द्रनाथ (बाघ जतीन) और ढाका के पुलिनदास प्रायः इनके छात्रावास में आते रहते थे। इस प्रकार मेघनाद साहा का सम्पर्क तत्कालीन क्रान्तिकारी युवक नेताओं से बना हुआ था। यद्यपि मेघनाद साहा राजनीति में कोई सक्रिय भाग नहीं लेते थे तथापि भारत की ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में वह शत्रु पक्ष के ही थे। अंग्रेज़ अधिकारी ऊँची सरकारी नौकरियाँ देने में इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू और भक्त ही स्थान पा सकें; राष्ट्रीय विचारधारा वाले नहीं। इन्हीं कारणों से मेघनाद साहा को प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी गई।

सक्रिय राजनीति में मेघनाद साहा के भाग न ले सकने के कई कारण थे। एक तो यह कि उन्होंने विज्ञान-साधना को अपना जीवन-उद्देश्य निश्चित कर

लिया था। दूसरा यह कि उनके घर की आर्थिक स्थिति उन्हें इस बात के लिए विवश कर रही थी कि वे कुछ कमाएं जिससे घर की गाड़ी चले। उनके बड़े भाई ने पढ़ाई के लिए उनकी सहायता की थी। अब उनका भी कर्तव्य था कि वे अपने छोटे भाई की पढ़ाई में सहायता करें।

नौकरी की प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति न मिलने से मेघनाद साहा निराश नहीं हुए।

मेघनाद साहा को सरकारी नौकरी न मिलने से एक तरह से अच्छा ही हुआ—मेघनाद साहा के लिए भी, विज्ञान के लिए भी और देश के लिए भी। यदि वे किसी ऊंचे सरकारी पद पर नियुक्त हो जाते तो उनकी विज्ञान-प्रतिभा का विकास रुक जाता और वे दफ्तर की फाइलों में खो जाते। विज्ञान-साधना के द्वारा उन्हें जो यश मिला, विज्ञान की उनके द्वारा जो प्रगति हुई, देश का जो गौरव बढ़ा—यह सब कुछ नहीं होता।

मेघनाद साहा ने समय को व्यर्थ न गंवाते हुए, गणित और भौतिकी में अनुसन्धान करने का निश्चय किया। छोटे भाई कन्हाईलाल को उन्होंने पढ़ाई के

लिए अपने पास बुला लिया और दोनों का खर्च जुटाने के लिए ट्यूशन करने लगे। प्रति दिन तीन जगह उन्हें ट्यूशन पढ़ाने जाना पड़ता और वह भी दूर-दूर। आने-जाने के लिए सवारी का किराया-भाड़ा देने की उनकी सामर्थ्य नहीं थी। कोई छात्र शामबाजार का था तो दूसरा भवानीपुर का। वे कभी पैदल और कभी साइकिल पर छात्रों को पढ़ाने जाते और जो कुछ मिलता उससे अपना और छोटे भाई का खर्च चलाते। इस तरह मेघनाद साहा ने एक वर्ष बड़ी आर्थिक तंगी में गुजारा।

अगले वर्ष, १९१६ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वनामधन्य उपकुलपति श्री आशुतोष मुकर्जी ने गणित विभाग में लेक्चरार का पद स्वीकार करने के लिए मेघनाद साहा को कहा। श्री आशुतोष मुकर्जी में मनुष्य-रत्नों को परखने की अनोखी प्रतिभा थी। अपने-अपने विषय के एक से एक योग्य विद्वान् को वे खोज-खोजकर कलकत्ता विश्वविद्यालय में नियुक्त करते थे। जैसे कोई रत्नपारखी मूल्यवान् रत्नों का संग्रह करता है, वैसे ही श्री आशुतोष मुकर्जी विद्वानों का संग्रह कलकत्ता विश्वविद्यालय में कर रहे थे।

मेघनाद साहा कलकत्ता विश्वविद्यालय में गणित

के लेक्चरार नियुक्त हो गए। परन्तु गणित के विभागाध्यक्ष प्रो० गणेशप्रसाद से मेघनाद साहा की बनी नहीं। फलस्वरूप उन्हें गणित विभाग से भौतिकी विभाग में भेज दिया गया और यह स्थानान्तरण उनके लिए बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ।

यहां मेघनाद साहा को स्नातकोत्तर कक्षा को भौतिकी पढ़ानी पड़ती थी। वे स्वयं बी० ए० तक भौतिकी पढ़े हुए थे। वह भी पास मात्र करने के लिए। इस स्थिति में एम० ए० कक्षाओं को भौतिकी पढ़ाना कोई सरल काम नहीं था।

यह काम मेघनाद साहा के लिए कठिन अवश्य था पर असम्भव नहीं। उच्च भौतिकी का आधार उच्च गणित ही है। इन दिनों मेघनाद साहा को बहुत परिश्रम करना पड़ता। वे पढ़ाने से पहले खूब पढ़ते और तब पढ़ाते। एम० एस-सी० पढ़ने वाले छात्र बड़े प्रबुद्ध होते हैं। वही विषय उन्होंने बी० ए० ऑनर्स में भी पढ़ा होता है। इसलिए उन्हें पढ़ाना, उनके प्रश्नों के उत्तर देना और शंकाओं का समाधान करना सुगम नहीं होता। मेघनाद साहा ने विधिवत भौतिकी का अध्ययन नहीं किया था, फिर भी वे अपनी निष्ठा और परिश्रम के बलबूते पर थोड़े ही दिनों

में भौतिकी के बहुत अच्छे शिक्षक माने जाने लगे। वे केवल कक्षा में पढ़ाते ही नहीं थे अपितु प्रयोगशाला में प्रयोग और अनुसन्धान कार्य का निर्देशन भी करते थे।

इस समय जर्मन भाषा का ज्ञान उनके बड़ा काम आया। कुछ समय पूर्व ही आइन्स्टाइन का आपेक्षिकता का सिद्धान्त प्रकाश में आ चुका था। उसका विवरण जर्मन भाषा में प्रकाशित हो चुका था। अंग्रेज़ी अनुवाद अभी नहीं हुआ था। जहां जर्मन भाषा न जानने वाले संसार के अनेक वैज्ञानिक आपेक्षिकता के दुरूह सिद्धान्त से अपरिचित थे, वहाँ जर्मन भाषा के ज्ञान के कारण मेघनाद साहा इस सिद्धान्त से सुपरिचित थे।

आपेक्षिकता सिद्धान्त आइन्स्टाइन ने प्रस्थापित तो कर दिया था पर व्यावहारिक रूप में उसकी परीक्षा अभी शेष थी।

मई, १९१९ ई० में अफ्रीका और ब्राजील में सर्व ग्रास सूर्य ग्रहण के समय आपेक्षिकता के सिद्धान्त की व्यावहारिक परीक्षा की गई तो सिद्धान्त सही निकला। कलकत्ता के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी दैनिक 'स्टेट्समैन' में सिद्धान्त के परीक्षण और सही होने का समाचार आया। पर यह सिद्धान्त क्या है, यह किसी को पता

नहीं था। अब सिद्धान्त का अता-पता बताए बिना वे क्या समाचार छापते। 'स्टेट्समैन' का सम्पादकीय विभाग किसी ऐसे वैज्ञानिक की खोज में था जो इस सिद्धान्त को समझता हो और पत्र के पाठकों के लिए उसका विवरण तैयार कर सके। संयोग से उन्हें मेघनाद साहा का पता लगा और उन्होंने उस समाचार को उपयुक्त विवरण के साथ प्रकाशित करने के लिए तैयार कर दिया। बाद में मेघनाद साहा और उनके सहयोगी सत्येन्द्रनाथ वसु ने आइन्स्टाइन के आपेक्षिकता सिद्धान्त का अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रस्तुत किया जिसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया था।

आइन्स्टाइन का आपेक्षिकता का सिद्धान्त भौतिकी के क्षेत्र में नए युग का आरंभ करने वाला सिद्धान्त है और मेघनाद साहा ने क्योंकि उससे सम्बन्धित कार्य किया है, इसलिए उसका कुछ परिचय यहाँ देना असंगत न होगा।

मोटे तौर पर आपेक्षिकता सिद्धान्त में आइन्स्टाइन ने बताया है कि प्रकाश का भी भार होता है। इतना मान लेने पर यह सुनिश्चित हो जाता है कि यदि प्रकाश में भार है तो सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से गुजरते समय सूर्य उसे किंचित्मात्रा में अपनी ओर

खींचेगा ही। इससे सुनिश्चित हुआ कि ताराओं का प्रकाश जब सूर्य के निकट से गुजरता है तो सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण सूर्य की ओर को मुड़ता है। इस सिद्धान्त के परीक्षण में कठिनाई यह थी कि सूर्य के चौंधिया देने वाले प्रकाश में, उसके इधर-उधर सुदूर-स्थित ताराओं को देख पाना या उनके चित्र ले सकना सम्भव नहीं था। हां, यदि कभी कहीं सर्वग्रास ग्रहण (जिसमें पूरा सूर्य छाया से ढक जाता है) हो तो उस समय दूरवीक्षण से तारे की सही स्थिति को देखा जा सकता है। २९ मई, १९१९ ई० को सूर्य-ग्रहण था और अफ्रीका और ब्राजील में वह सर्वग्रास था। इसलिए वैज्ञानिकों के दल पूरी तैयारी के साथ उन स्थानों में गए और सर्वग्रास ग्रहण के समय निरीक्षण करने पर उन्होंने आपेक्षिकता सिद्धान्त को सही ठहराया। आइन्स्टाइन ने आपेक्षिकता सिद्धान्त की स्थापना १९०५ई० में की थी। उससे पूर्व १९०० ई० से अब तक वैज्ञानिक प्रकाश के भार को मापने का प्रयत्न कर रहे थे पर किसी को भी इसमें सफलता नहीं मिली थी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में साइंस का प्रारम्भ कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ था। उसमें उपकरणों आदि की

कमी थी। पर मेघनाद साहा इन बातों से हताश नहीं हुए। अपने प्रयोगों के लिए उन्होंने स्वयं उपकरण बनाए और अनुसंधान को आगे बढ़ाते रहे। अनुसंधान करना, उसे लिपिबद्ध कर शोध-निबन्ध तैयार करना और छात्रों को शिक्षित करना, इतने काम मेघनाद साहा एक साथ कर रहे थे। साहा के शोध-निबन्ध इंग्लैंड और अमेरिका की भौतिक विज्ञान की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। १९१८ ई० में जब मेघनाद साहा की अवस्था अभी पच्चीस वर्ष की थी, उन्होंने स्वनिर्मित यंत्र द्वारा प्रकाश के भार या दबाव को नापकर दिखा दिया। गत अठारह वर्षों से इस कार्य के लिए विभिन्न वैज्ञानिक यत्न कर रहे थे पर सफलता मिली केवल मेघनाद साहा को।

इस शोध के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० एस-सी०-डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्रदान की।

विज्ञान की प्रत्येक प्रमुख शाखा को विशेषीकृत अध्ययन के लिए कई उपशाखाओं में बांट लिया गया है। इसका लाभ यह है कि कोई वैज्ञानिक किसी एक उपशाखा क अध्ययन को अपना क्षेत्र बनाकर उसकी बारीकियों का अनुसंधान कर सकता है। भौतिकी के

अन्तर्गत तारामंडल के अध्ययन को 'तारा भौतिकी' कहा जाता है । इसमें ताराओं की दूरी, जिन तत्त्वों से वे निर्मित हैं, उनका ज्ञान, उनकी गति, स्थिति और प्रकाश का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है ।

आकाश में असंख्य तारे हैं । हमारा सूर्य भी एक छोटा-सा तारा है जो अन्य तारों की अपेक्षा हमारे अधिक पास होने के कारण बड़ा दिखाई देता है, जबकि दूसरे तारे इससे भी कई-कई गुणा बड़े हैं । ये तारे हमसे कितनी-कितनी दूर हैं, यह बताने के लिए उनके प्रकाश को हम तक पहुंचने में जितना समय लगता है, उससे गिनती की जाती है । पर यह जानकर आश्चर्य होता है कि उनमें से कितने ही इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाश को पृथ्वी तक पहुंचने में हजारों वर्ष लग जाते हैं । उन वर्षों की संख्या को अंकों में लिखने से बड़ी लम्बी संख्या बनती है । इसलिए एक दूसरा तरीका निकाला गया है । प्रकाश एक सेकंड में तीन लाख किलोमीटर की गति से चलता है । एक वर्ष में यह जितनी दूरी तय करता है, उसे प्रकाश-वर्ष कहते हैं । इस प्रकार नक्षत्रों की दूरी को प्रकाश-वर्षों में दिखाया जाता है ।

नक्षत्रों का अध्ययन करने वाले तारा-भौतिकी

वैज्ञानिक इस बात का पता लगाने का यत्न करते हैं कि कौन-सा नक्षत्र किस पदार्थ से बना है ? नक्षत्रों की ऊष्मा और प्रकाश की विविधता का क्या कारण है ? इतनी दूर स्थित इन नक्षत्रों के बारे में ये सब बातें कैसे जानी जाती हैं ? इन नक्षत्रों से आने वाले प्रकाश का विश्लेषण करके ही वैज्ञानिक इन बातों का पता लगाते हैं। शुभ्र प्रकाश सात रंगों का बना होता है। प्रिज्म में से शुभ्र प्रकाश जब गुजरता है तो प्रत्येक वर्ण की किरणें भिन्न-भिन्न अनुपात में मुड़ जाती हैं जिस से सारे वर्ण अलग-अलग दिखाई दे जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने विभिन्न गैसों और पदार्थों को जलाकर यह सुनिश्चित कर लिया है कि किस पदार्थ से किस वर्ण का प्रकाश निकलता है। अब किसी नक्षत्र से निकलने वाले प्रकाश का जब विश्लेषण किया जाता है तो विविध वर्णी प्रकाश से उस नक्षत्र की रचना करने वाले पदार्थों का पता चल जाता है।

किन्तु कुछ नक्षत्रों के रश्मि-विश्लेषण और ज्योतिमापन से जो परिणाम प्राप्त होते थे, उन्हें पूर्व-निर्धारित परिणामों से मिलाने पर समाधान नहीं होता था। इनके चित्रों की वर्ण पट्टिकाएं, ज्ञात पदार्थों की वर्ण पट्टिकाओं से नहीं मिलती थीं।

डा० मेघनाद साहा ने इस समस्या को सुलझाने का काम अपने हाथ में लिया। उन्होंने स्पैक्ट्रा का गहराई से अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने इससे सम्बन्धित पुराने शोध-निबन्धों का बारीकी से अध्ययन किया। लम्बे अध्ययन और परीक्षणों के बाद डा० साहा इस निश्चय पर पहुंचे कि अधिक ऊंचे तापक्रम तथा अल्प दबाव पर सूर्य के वर्ण-मण्डल के परमाणु आयोनाइज्ड हो जाते हैं। साधारण गैसें अथवा धात्विक वाष्पों के परमाणु में विद्युत् की नेगेटिव और पोजेटिव की समान मात्रा होती है। ऊंचे ताप-मान और दबाव पर परमाणु खण्डित हो जाता है और उसका विद्युत् सन्तुलन समाप्त हो जाता है। परमाणु की इस स्थिति को ही आयोनाइज्ड होना कहते हैं। इसे 'तापीय आयोनाइजेशन' कहते हैं। डा० साहा ने यह पता लगाने की विधि खोज निकाली कि जिस तारे का अध्ययन किया जा रहा है, उसके रचना-तत्त्व किस तापीय आयोनाइजेशन की स्थिति में हैं। गणित द्वारा उन्होंने तापांश का पता लगाया और यह कि उसमें से निकलने वाले प्रकाश की वर्ण-पट्टिका कैसी होगी।

१९२० ई० में लन्दन की फिलॉसफिकल मैगज़ीन

में डा० साहा ने अपनी शोध का विवरण प्रकाशित करा दिया। उन्होंने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया था और जिसका आधार तापीय आयोनाइजेशन था, बाद में सत्य सिद्ध हुआ।

उनकी इस शोध से तारा-भौतिकी सम्बन्धी समस्याओं का समाधान हो सका।

१६ जून, १९१८ ई० को डा० साहा का विवाह श्रीमती राधारानी के साथ सम्पन्न हुआ। अनुरूप जीवन-साथी को पाकर डा० साहा की प्रतिभा और कार्यशक्ति अधिकाधिक विकसित होती गई।

कलकत्ता विश्वविद्यालय, साइन्स विभाग ने डा० साहा की खोज के महत्त्व को समझते हुए अनुभव किया कि वे अधिक कार्य कर सकें, इसके लिए उन्हें सुविधाएं प्रदान की जाएं। भारत में उस समय वैज्ञानिक उपकरणों का अभाव था। अतः यूरोप के वैज्ञानिकों और वहां की प्रयोगशालाओं में कार्य करने की सुविधा जुटाना आवश्यक था। सन् १९१९ई० में उन्हें प्रेमचन्द रायचन्द शोध-छात्रवृत्ति और गुरुप्रसन्न घोष यात्रा फैलोशिप प्रदान की गई।

विदेशों में शोध-कार्य

सितम्बर, १९१९ ई० को डा० साहा शोध-कार्य के लिए लन्दन गए। पर लन्दन जाकर उन्हें शीघ्र ही पता चल गया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय से मिलने वाली वृत्तियों से यहां का खर्च पूरा नहीं हो सकता। उनके पुराने सहपाठी स्नेहमय दत्त इन दिनों यहां डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि के लिए शोध-कार्य कर रहे थे। डा० साहा ने अपनी कठिनाई उन्हें बताई। श्री स्नेहमय दत्त के सुझाव से डा० साहा तारा-भौतिकी के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० फाउलर से मिले। डा० साहा ने अपने शोध-कार्य का संक्षिप्त विवरण उन्हें बताया। उनके कार्य से प्रभावित होकर प्रो० फाउलर उन्हें अपनी प्रयोगशाला में लेने को तैयार हो गए। डा० मेघनाद साहा डा० फाउलर के शोध-सहायक नियुक्त हो गए। यहां डा० साहा को स्पैक्ट्रोस्कोपी का गहराई से अध्ययन करने का अवसर मिला। प्रो० फाउलर इस विषय के विशेषज्ञ थे ही। प्रो० फाउलर ने इस विषय पर किए गए अपने कार्य का प्रारम्भिक विवरण लिखा

हुआ था। अब डा० साहा के साथ उन्होंने उस विवरण को संशोधित करवाना प्रारंभ किया।

डा० साहा का तापीय आयोनाइजेशन का सिद्धान्त अभी भी सूर्य और अन्य तारों के स्पैक्ट्रा को व्याख्यायित करने में अक्षम था। आवश्यकता इस बात की थी कि उच्च ताप और दबाव के द्वारा प्रयोगशाला में परीक्षा करके उसकी सत्यता को प्रमाणित किया जाए—गैसों और धात्विक वाष्पों को उच्च तापमान और विभिन्न दबावों पर गर्म करके—इतने उच्च तापमान और दबाव पर जितना कि सूर्य में विद्यमान था। यदि उन्हें ऐसा उपकरण उपलब्ध हो जाता जिसमें इतना उच्च तापमान उत्पन्न करना संभव होता तो समस्या सुलझ जाती। पर लन्दन के इम्पीरियल कॉलेज में यह उपकरण नहीं था। डा० साहा ने अपनी इच्छा प्रो० फाउलर से व्यक्त की। प्रो० फाउलर ने केवेंडिश लेबोरेट्री, कैम्ब्रिज से पता करने का सुझाव दिया कि सम्भवतः उनके पास यह उपकरण हो। डा० साहा केवेंडिश लेबोरेट्री में सर जे० जे० थामस से मिले जो ख्याति-प्राप्त वैज्ञानिक थे। डा० साहा के इस शोध के विचार से वे बहुत प्रभावित हुए। पर यह उपकरण वहां भी

नहीं था। डा० साहा ने जे० जे० थामस से अपनी बातचीत का सारांश सुनाया तो प्रो० फाउलर ने अनुभव किया कि युवक वैज्ञानिक इस उपकरण के न मिलने से निराश है। बात ठीक भी थी। इस उपकरण के अभाव में सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता था। प्रो० फाउलर इस सिद्धान्त के महत्त्व से भली-भांति परिचित थे और वे डा० साहा की पूरे मन से सहायता भी करना चाहते थे।

उन्होंने डा० साहा को जर्मनी के प्रो० नारनेस्ट को पत्र लिखने के लिए कहा। उनका विचार था कि उनके पास यह उपकरण होगा।

इस बीच मैक्लेनन ने डा० साहा के तापीय आयोनाइजेशन के सम्बन्ध में प्रयोग करने प्रारंभ किए। मैक्लेनन ने प्रयोग के लिए पारद वाष्प को चुना। पर जिस प्रकार की वर्ण-पट्टिका की भविष्य-वाणी डा० साहा ने की थी वह नहीं आयी। इससे मैक्लेनन ने निष्कर्ष निकाला कि डा० साहा का सिद्धान्त ठीक नहीं है।

डा० साहा ने मैक्लेनन के प्रयोग के परिणाम को देखने के बाद कहा कि यह कार्य इतना सुगम नहीं है। प्रयोगशाला में पारद को आयोनाइज्ड करना

असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है । बहुत ही उच्च तापमान की आवश्यकता है, और उतना तापमान प्रयोगशाला में उत्पन्न करना साधारणतया संभव नहीं है। पारद की अपेक्षा सोडियम और पोटेशियम को प्रयोगशाला में प्राप्त तापमान पर आयोनाइज्ड करना सरल है । कुछ अन्य पदार्थ भी जैसे रुबीडियम और कैसियम आयोनाइज्ड किए जा सकते हैं । सूर्य के उच्च तापमान में ये पदार्थ इतने अधिक आयोनाइज्ड हो जाते हैं कि उनके प्रकाश का स्वरूप पहचान में नहीं आता । डा० साहा ने यह भी बताया कि वैसा प्रकाश सूर्य-कलंकों से प्राप्त किया जा सकता है जहां ऊष्मा उतनी नहीं होती ।

इससे कुछ समय बाद अमेरिकी प्रोफेसर हेनरी नोरिस रसेल ने डा० साहा को लिखा कि आपकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई है। उन्हें सूर्य-कलंकों के प्रकाश का स्पैक्ट्रा द्वारा अध्ययन करने पर वे ही परिणाम प्राप्त हुए थे, जिनके होने की भविष्यवाणी डा० साहा ने की थी ।

इन्हीं दिनों डा० साहा प्रोफेसर नारनेस्ट की प्रयोगशाला में कार्य करने के लिए जर्मनी चले गए । प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था । ब्रिटेन से जर्मनी हार

चुका था। इस हार के कारण ब्रिटेन के प्रति जर्मनों के मन में गहरी घृणा थी। यह स्वाभाविक भी था। उस समय भारत ब्रिटिशों द्वारा शासित था और भारत की सेनाओं ने इस युद्ध में ब्रिटेन की खूब सहायता की थी। इसलिए भारतीयों के प्रति भी द्वेष की भावना जर्मनवासियों के मन में विद्यमान थी। जब डा० साहा जर्मनी पहुंचे तो इस बात की पूरी संभावना थी कि उन्हें प्रयोगशाला में नहीं जाने दिया जाए परन्तु प्रोफेसर नारनेस्ट ने अपनी प्रयोगशाला में कार्य करने की उन्हें पूरी छूट दे दी। वहां भी डा० साहा का जर्मन भाषा का ज्ञान उनके खूब काम आया। अन्य जर्मन प्रोफेसरों और शोध-छात्रों ने भी उन्हें पूरा सहयोग दिया जिससे वे अपने सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने में तत्परता से कार्य कर सकें। इन उपयुक्त परिस्थितियों में उनके प्रयोग-कार्य और शोध-कार्य में अच्छी प्रगति हुई।

स्वदेश को वापसी

१९२१ ई० में डा० साहा को एकाएक स्वदेश लौटना पड़ा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वनाम-धन्य कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने उन्हें तार देकर बुला लिया था। कारण यह था कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग में प्रोफेसर पद पर नियुक्ति होनी थी। सर आशुतोष इस पद पर डा० साहा की नियुक्ति करना चाहते थे। पंजाब की खेड़ा स्टैट के श्री गुरुप्रसाद सिंह के दान से इस प्रोफेसर-पीठ की स्थापना हुई थी। शोध-कार्य के संचालन और भौतिकी के लिए उन्हें यह पद देने की बात थी।

सर आशुतोष मुखर्जी मनुष्य के पारखी थे। ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के लिए उन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालय को केन्द्र बनाकर ऐसा कार्य किया है जो सदियों तक स्मरण किया जाएगा। उन्हें इस विश्वविद्या-लय के लिए धन जुटाने का कार्य भी करना पड़ता था। ब्रिटिश सरकार नहीं चाहती थी कि भारत ज्ञान-विज्ञान

के क्षेत्र में उन्नति करे। इसलिए विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार से आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी। सर आशुतोष सामर्थ्यवान सज्जनों से दान लेकर धन की कमी को पूरा करते थे। खेड़ा स्टेट के श्री गुरुप्रसाद सिंह ने प्रोफेसर-पीठ के लिए जो दान दिया था वह पर्याप्त नहीं था। विकासमान् विज्ञान-विभाग की प्रयोगशाला में उपकरणों और साज-सामान की बड़ी कमी थी। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय के लिए विज्ञान विषय की बहुत-सी पुस्तकों की आवश्यकता थी। शोध-छात्रों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि वे समस्त देशों में अब तक हुई विज्ञान की उपलब्धियों से परिचित रहें और अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए शोध करें।

धन की कमी के कारण डा० साहा को शोध-कार्य का संचालन करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनके पास कोई सहायक नहीं था। प्रयोग-शाला में उपकरणों की और पुस्तकालय में पुस्तकों की कमी ज्यों की त्यों बनी रही। उनके अपने प्रयोग भी साधनों के अभाव में आगे नहीं बढ़ सके। डा० साहा ने अनुभव किया कि समय का सदुपयोग नहीं

हो रहा। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय छोड़ने का निश्चय किया।

डा० मेघनाद साहा को मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़; हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस; प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में प्रोफेसर के पद पर और कोडाई कोनाल स्थित वेधशाला में असिस्टेंट डायरेक्टर के पद पर नियुक्ति के प्रस्ताव मिले। बहुत सोच-विचार के बाद डा० साहा ने प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का पद स्वीकार कर लिया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

कलकत्ता विश्वविद्यालय को डा० साहा ने जिस कठिनाई के कारण छोड़ा था, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में फिर उसी का सामना करना पड़ा। यहां भी प्रयागशाला में उपकरणों और साज-सामान की बड़ी कमी थी। यह सन् १९२३ ई० का समय था। वे भौतिकी के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए थे। सरकार आर्थिक सहायता नहीं दे रही थी। पुस्तकालय भी नाम मात्र का ही था। उसमें थोड़ी-सी पुरानी प्रकाशित पुस्तकें ही थीं। वर्कशाप में मशीनों को चलाने के लिए बिजली भी उपलब्ध नहीं थी। काम की भी अधिकता थी। कलकत्ता में साहा को केवल एम. एस-सी. कक्षा को पढ़ाना होता था। यहां एम.एस-सी. के साथ ही बी.एस-सी. कक्षा को भी पढ़ाना पड़ता था। विश्वविद्यालय के कोषाध्यक्ष कन्हैयालाल दुबे नामक एक अवकाश-प्राप्त जज थे। जब उन्हें नई पुस्तकें मंगाने के लिए धन स्वीकार करने को कहा गया तो वे स्वयं पुस्तकालय को देखने आए। वहां रखी पुरानी

पुस्तकों को देखकर वे डा० साहा से बोले कि क्या आपने इन सब पुस्तकों को पढ़ लिया है, जो नई पुस्तकें मंगाना चाह रहे हैं ?

डा० साहा ने उत्तर दिया, "कोई भी इन पुस्तकों को आद्योपान्त नहीं पढ़ सकता।"

इस पर कोषाध्यक्ष महोदय बोले, "तो फिर और पुस्तकों की क्या आवश्यकता है । पहले आप इन्हें अच्छी तरह पढ़ लीजिए, तब नई पुस्तकें मंगाने के लिए धन की मांग कीजिए ।"

यह थी इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थिति। इस पर स्थानीय लोग समझते थे कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय भारत का श्रेष्ठतम विश्वविद्यालय है और यह आधुनिकतम साज-सामान से परिपूर्ण है । इसमें किसी चीज की कमी नहीं है । इस प्रकार के झूठे प्रचार का लाभ उठा कर सरकार ने डा० साहा द्वारा की गई धन की माँग को अस्वीकार कर दिया। डा० साहा के सामने विकट समस्या थी। उनका सारा समय कक्षाओं को पढ़ाने में व्यतीत हो जाता था। न अपने शोध-कार्य को आगे बढ़ाने के लिए समय और सुविधा थी, न शोध-छात्रों से शोध

कराने की सुविधा। मात्र गर्मियों की छुट्टियां थीं, जिन में पढ़ाने से अवकाश मिलता था पर इलाहाबाद में इतनी अधिक गर्मी पड़ती है कि वहां गर्मियों में रहना आग में झुलसने जैसा दुःखदायी था। फिर भी अपनी धुन के पक्के डा० साहा झुलसा देने वाले गर्मी और लू के इन दिनों में भी प्रयोगशाला में अपने काम में जुटे रहते। किसीने ठीक ही कहा है : कार्यशील लोग कष्टों की परवाह नहीं करते।

रायल सोसायटी के सदस्य

१९२७ ई० में लन्दन की विश्व-प्रसिद्ध संस्था रायल सोसायटी ने डा० साहा को अपना सदस्य मनोनीत किया। उस समय संयुक्त प्रान्त के गवर्नर थे सर विलियम मारिस। वे स्वयं भी विद्वान् थे और विद्वानों का मान भी करते थे। रायल सोसायटी का सदस्य मनोनीत होना कोई साधारण बात नहीं थी। गिने-चुने विशिष्ट योग्यता वाले लोगों को ही इसका सदस्य मनोनीत किया जाता था।

गवर्नर सर विलियम मोरिस ने रायल सोसायटी का सदस्य मनोनीत होने पर डा० साहा को बधाई का पत्र भेजा।

इस बधाई पत्र का उत्तर देते हुए डा० साहा ने गवर्नर को लिखा कि वे किन कठिन परिस्थितियों में यहाँ काम कर रहे हैं। उपकरणों, अन्य साज-सामान और पुस्तकालय में पुस्तकों के अभाव का उल्लेख करते हुए उन्होंने सारी स्थिति पर प्रकाश डाला।

उन्होंने गवर्नर महोदय से इस कार्य के लिए आर्थिक सहयोग की अपील की।

गवर्नर महोदय पर इस पत्र का वांछित प्रभाव पड़ा और उन्होंने तत्काल पाँच हज़ार रु० प्रति वर्ष की सहायता देने की स्वीकृति दे दी।

आज के मंहगाई युग में यद्यपि पांच हजार रुपयों की राशि नगण्य है तथापि उस समय यह राशि पर्याप्त न होते हुए भी, महत्वपूर्ण थी। इससे डा० साहा ने एक शोध-सहायक को नियुक्त कर लिया। पर उपकरणों का अभाव फिर भी ज्यों का त्यों बना रहा। जब सरकार या अन्य स्रोतों से अन्य कोई सहायता नहीं मिली तो विज्ञान की उन्नति के लिए समर्पित डा० साहा ने सहायता के लिए रायल सोसायटी लन्दन को लिखा। रायल सोसायटी ने उन्हें बीस हजार रुपए के लगभग सहायता प्रदान की। इससे आवश्यक उपकरण खरीद कर शोधकार्य का श्रीगणेश हो सका। लम्बे समय से रुके तापीय आयोनाइजेशन से सम्बद्ध शोध-कार्य का फिर प्रारंभ हुआ। बीच का दस-बारह वर्ष का समय साधनों के अभाव में व्यर्थ-सा बीत गया था। पर इस संघर्ष काल में भी डा० साहा का लक्ष्य

सदा उनके सामने रहा। वे धैर्य पूर्वक परीक्षण करते रहे। निराशा उन्हें संकल्प से विमुख नहीं कर सकी। धुन के पक्के, संकल्पवान् पुरुषों का यह विशेष चारित्रिक गुण होता है कि वे अपने पथ की बाधाओं से घबराते नहीं। कभी हार नहीं मानते और अन्त में विजय-श्री उनका वरण करती है।

महान् चरित्र-सम्पन्न पुरुष अपने सपनों को सदा साकार करते रहे हैं। साधारण पुरुषों और महापुरुषों में यही अन्तर होता कि जहां साधारण पुरुष अपनी इच्छाओं को स्वप्नों में पूरा करते है, वहां महापुरुष अपने सपनों को कार्य रूप में मूर्त्त करते हैं।

तापीय आयोनाइजेशन का सिद्धान्त दिनोंदिन प्रगति करता गया और दृढ़ आधार पर सुस्थापित होता गया।

गुणों का सभी मान करते हैं

ज्यों-ज्यों तापीय आयोनाइजेशन का सिद्धान्त सुस्थापित होता गया और विज्ञान-जगत उसके महत्त्व से सुपरिचित होता गया, डा० साहा की ख्याति देश-विदेश में फैलती गई। सन् १९२७ ई० में रायल सोसायटी, लन्दन ने उन्हें अपना फैलो मनोनीत किया था। इस से पूर्व भी चार भारतीय वैज्ञानिकों को इस विश्व सम्मानित संस्था का फैलो बनने का गौरव-पूर्ण सम्मान प्राप्त हो चुका था। उनके नाम हैं : श्री अर्देशर कसेंट, श्री श्रीनिवास रामानुजन्, आचार्य जगदीशचन्द्र वसु, आचार्य चन्द्रशेखर वेंकट रामन। यह सम्मान प्राप्त करने वाले पांचवें भारतीय वैज्ञानिक थे, डा० मेघनाद साहा।

१९२७ ई० को ही इटली में अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान कान्फ्रेंस हुई। डा० साहा को भारत के प्रतिनिधि भौतिक विज्ञानी के रूप में उसमें सादर आमंत्रित किया गया जहां उन्होंने वोल्टा शताब्दी महो-

त्सव में भी भाग लिया और नक्षत्र-रश्मि चित्र-सिद्धान्त पर व्याख्यान भी दिया।

इन्हीं दिनों नार्वे में पूर्ण ग्रास सूर्य ग्रहण होने वाला था। नार्वे का एक वैज्ञानिक दल पूर्ण ग्रहण के समय सूर्य-मण्डल का अध्ययन करने वाला था। डा० साहा उनमें सम्मिलित हुए। यहां की जाँच से यह प्रमाणित हुआ कि सूर्य रश्मि चित्रों के सम्बन्ध में डा० साहा की भविष्यवाणी शत प्रतिशत सही है।

इंग्लैंड की प्रसिद्ध संस्था इन्स्टीयूट आफ फिजिक्स ने भी डा० साहा को अपना फैलो मनोनीत किया।

१९३० में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसा-ने भी डा० साहा को फैलो मनोनीत किया।

१९३४ ई० में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के बम्बई में होने वाले अधिवेशन के सभापति का सम्मान भी डा० साहा को प्रदान किया गया। इससे पूर्व आठ वर्ष वे १९२६ ई० में विज्ञान कांग्रेस के भौतिक और गणित विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके थे।

विज्ञान काँग्रेस के बम्बई अधिवेशन के अवसर पर

अपने सभापति के अभिभाषण में डा० साहा ने भारतीय वैज्ञानिकों के संगठन और शोध-कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए भी अनेक व्यावहारिक सुझाव देने के साथ ही, ब्रह्माण्ड की सृष्टि और नक्षत्रों से सम्बन्धित अनेक नये तथ्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने नक्षत्रों की उत्पत्ति, नक्षत्रों की स्थिति, संचित शक्ति, प्रकाश के विकिरण आदि पर प्रकाश डाला।

उन्होंने भारत में 'इण्डियन अकादमी आफ साइंसेज' नामक संस्था की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। देश में हो रही विज्ञान की प्रगति को सुव्यवस्थित और सुनियोजित करने का कार्यभार संभालने के लिए ऐसी एक संस्था की स्थापना के सुझाव का वैज्ञानिकों ने स्वागत किया। इस संस्था की स्थापना और संगठन के सम्बन्ध में एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने के लिए एक उपसमिति की स्थापना की गई। इस उपसमिति ने एक वर्ष पश्चात्, विज्ञान काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। उसी अधिवेशन में जनवरी, १९३५ को कलकत्ता में 'नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज़' की स्थापना की गई।

१९३५ ई० में अमेरिका के सुप्रसिद्ध कार्नेगी ट्रस्ट ने डा० मेघनाद साहा को अयन मण्डल सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए विदेश यात्रा के लिए फैलोशिप के रूप में एक अच्छी राशि प्रदान की। अयन मण्डल के अध्ययन का कार्य डा० साहा ने १९३३ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रारम्भ कर दिया था। ऊंचे वायु मण्डल में वायु आयोनाइज्ड हो जाती है। धरती से सैकड़ों मील ऊपर आयोनाइज्ड वायु की कई परतें हैं। आयोनाज्ड वायु की परतें अयन मण्डल का निर्माण करती हैं। रेडियो तरंगें इस अयन मण्डल द्वारा प्रतिक्षिप्त होकर ही रेडियो प्रसारणों को पृथ्वी मण्डल में ग्रहण करने योग्य बनाती हैं। यह सुविदित तथ्य है कि धरती गोल है। फिर सुदूर योरोप के प्रसारणों को हम भारत में कैसे सुन पाते हैं।

रेडियो तरंगे प्रकाश तरंगों की भांति नहीं चलतीं। वे सीधी रेखा में चलती हैं। सूदूर पूर्व के रेडियो प्रसारण यदि अयन मण्डल द्वारा प्रतिक्षिप्त न हों तो वे हमारे देश में रेडियो द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते। अयन मण्डल से सम्बद्ध अन्य अनेक बातों की जानकारी भी अपेक्षित थी। यही कारण था कि डा०

साहा ने इस महत्वपूर्ण कार्य को अपनी शोध का विषय बनाया।

१९३५ ई० में डा० साहा कोपेनहेगेन में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय ज्योति भौतिक विज्ञान कान्फ्रेंस में भी सम्मिलित हुए।

उस कान्फ्रेंस में भाग लेने के पश्चात् वे अमेरिका गए और हारवर्ड विश्वविद्यालय के त्रिशताब्दी समारोह में भारत का प्रतिनिधित्व किया। यह यात्रा विज्ञान के ज्ञान का आदान-प्रदान करने की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण रही। यूरोप और अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से अयन मण्डल के बारे में चर्चा-परिचर्चा करने का डा० साहा को बहुत अच्छा सुयोग मिला। वहां की उन्नत उपकरणों से सज्जित प्रयोगशालाओं में अनुसन्धान करने का सुयोग भी उन्हें मिला।

फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय में

डा०साहा पन्द्रह वर्ष तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन और अनुसन्धान का निदेशन करने के बाद सन् १९३८ ई० में फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय में लौट आए। वहां श्री तारकनाथ पालित द्वारा प्रदत्त दान-राशि से भौतिकी प्रोफेसर पीठ की स्थापना की गई थी। डा० साहा इसी पद पर नियुक्त किए गए थे।

यहां आकर डा० साहा ने अपने अनुसन्धान की दिशा बदल दी। इलाहाबाद के उनके सहयोगी तापीय आयोनाइजेशन और अयन मण्डल सम्बन्धी खोजों को आगे बढ़ाने के कार्य में लगे हुए ही थे। इसलिए डा० साहा ने यह उचित समझा कि वे अब किसी दूसरे अछूते क्षेत्र को चुनें।

डा० साहा ने आणविक भौतिकी (न्यूक्लियर फिजिक्स) को अपने अनुसन्धान का क्षेत्र बनया। इससे कुछ समय पूर्व ही अणु के मूल तत्त्व 'न्यूट्रोन'

की खोज हो चुकी थी। विद्युत की दृष्टि से उदासीन (न्यूट्रल) होने के कारण (अर्थात् धनात्मक या ऋणात्मक न होने के कारण) ये परमाणु न्यूट्रान कहलाते हैं। परमाणु विज्ञान में न्यूट्रानों का बड़ा महत्त्व है क्योंकि ये प्रोटोनों की एक-दूसरे से अलग भाग जाने की प्रवृत्ति को रोके रखते हैं। जैसे दो विजातीय विद्युत आवेशों के बीच सदा प्रबल आकर्षण होता है, वैसे ही दो सजातीय विद्युत आवेशों के बीच प्रबल प्रतिकर्षक बल होता है अर्थात् एक-दूसरे को परे ढकेलते हैं। दो इलैक्ट्रान बहुत पास लाए जाएं तो वे एक-दूसरे से दूर जा पड़ेंगे। दो प्रोटान भी एक जगह लाने पर दूर-दूर हो जाएंगे, यदि उन्हें एक जगह पकड़े रखने के लिये न्यूट्रान विद्यमान न हों। न्यूट्रान एक प्रकार का बांधने वाला बल है। डा० साहा चाहते थे कि भारत विज्ञान के इस नवीनतम क्षेत्र को जरूर अपनाए। उन्होंने अपनी प्रयोगशाला को इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सक्षम बनाने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। उपकरण बनाने के लिए एक वर्कशाप की भी आवश्यकता थी। पर इन कामों के लिए धन उपलब्धि के मार्ग की कठिनाइयां अब भी विद्यमान थीं।

विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ ही उद्योगों और व्यवसायों की उन्नति होती है और सुदृढ़ आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त होती है। स्वतंत्र और प्रगतिशील देशों की सरकारें और उद्योगपति इस बात को अच्छी तरह जानते हैं और वे विज्ञान की उन्नति के लिए खूब धन खर्च करते हैं। पर भारत की उस समय की परिस्थिति इससे एकदम भिन्न थी। विदेशी सरकार की इस देश की उन्नति में कोई रुचि नहीं थी, और बड़े-बड़े उद्योगपति भी अधिक नहीं थे। जो कुछ थे भी वे इस दिशा में जागरूक नहीं थे।

डा० साहा ने इस दिशा में प्रथम पग के रूप में कॉस्मिक किरणों के अनुसन्धान के लिए प्रयोगशाला की स्थापना की। कॉस्मिक किरणें बड़ी विचित्रतापूर्ण हैं। वे आकाश से पृथ्वी पर आती हैं और दिखाई नहीं देतीं। विशेष यंत्रों द्वारा ही, उनकी उपस्थिति को जाना जा सकता है। रात हो या दिन, इन अदृश्य किरणों की शक्ति एक जैसी बनी रहती है। ये शक्तिशाली किरणें धातुओं, कंकरीट और पत्थरों के भी आर-पार चली जाती हैं। यह कोई नहीं बता सकता कि वे कहां से और कैसे आती हैं। हां, इतना सुनिश्चित है कि उन

की उत्पति धरती पर न होकर सुदूर आकाश में कहीं होती है।

धरती पर पहुंचने से पहले ये किरणें वायुमंडल का भेदन करती हैं। वे वायु कणों को विचलित करके वायु को आयोनइज्ड करती हैं। वायु को आयोनाइज्ड करने के कारण मूल कास्मिक किरणें अपनी ऊर्जा को खो देती हैं, किन्तु वायु के आयोनाइज्ड हो जाने के कारण, उसमें से विद्युत किरणों की बौछार होने लगती है। इस बौछार से पुनरुत्पन्न होने वाली किरणों को सैकण्ड्री कास्मिक किरणें कहते हैं। इस प्रकार मूल कास्मिक किरणों और सैकण्ड्री कास्मिक किरणों का मिश्रित रूप धरती तक पहुंचता। ऊर्ध्व आकाश में, अयन मंडल में यदि जाएं और वहां भी कास्मिक किरणों का परीक्षण करें तो मूल कास्मिक किरणों के पाए जाने की अधिक संभावना है।

डा० मेघनाद साहा ने अपने दो शोध सहयोगियों डा० पी० सी० भट्टाचार्य और डा० एन० दास गुप्त को दार्जिलिंग की पहाड़ियों पर भेजा ताकि वे ऊंचाई पर कास्मिक किरणों को नाप सकें। ये पहाड़ियां कोई सात हजार फुट की ऊंचाई वाली थीं।

अणुविक अनुसन्धान कार्य का कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रारंभ हो जाने के पश्चात् यह आवश्यक हो गया कि साइक्लोट्रोन नामक बहुमूल्य यंत्र प्रयोगशाला में लगाया जा सके। एक लाख के लगभग मूल्य के इस यंत्र को खरीदने के लिए विश्वविद्यालय की सीनेट को स्वीकृति प्राप्त कर ली गई। टाटा प्रतिष्ठान ने भी इसमें सहायता के रूप में साठ हजार रुपये दान दिया। यह १९३९ ई० के दिन थे। साइक्लोट्रोन खरीदने की सारी व्यवस्था हो गई थी और लगता था कि शीघ्र ही यह यंत्र कलकत्ता विश्वविद्यालय में आ जाएगा किन्तु इन्हीं दिनों द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया।

यह यंत्र अमेरिका के डा० ई० ओ० लारन्स ने बनाया था। डा० साहा का एक छात्र डा० पी० एन० नाग चौधरी इन दिनों अमेरिका में डा० ई० ओ० लारन्स के साथ ही काम कर रहा था। यंत्र की खरीद का काम उसी को सौंपा गया था। पर युद्ध की विभीषीका के भड़क उठने से इस कार्य में बाधा पड़ गई। पत्रों के आने-जाने और खोजों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने में भी कठिनाई होने लगी। इससे

डा० साहा बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने अमेरिका स्थित अपने मित्रों को लिखा कि आणविक और नाभिकीय विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रगति हो रही है, उसकी सूचना उपलब्ध कराएं।

उधर अमेरिका में अमरीकी आणविक विज्ञानी एटम बम बना रहे थे। पर कुछ एक वैज्ञानिकों को छोड़कर जो उस बम के निर्माता थे और किसीको इस बारे में कुछ पता नहीं था। सारा काम अत्यन्त गोपनीय विधि से हो रहा था। इस सम्बन्ध में अमेरिका में भी किसीको कुछ पता नहीं था।

बाद में जापान के दो नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम बरसाए गए और जापान के आत्म-समर्पण के बाद द्वितीय विश्व युद्ध का अन्त हुआ।

सन् १९४४ ई० में जब अभी युद्ध का अन्त नहीं हुआ था, भारतीय वैज्ञानिकों का एक दल, जिसमें डा०मेघनाद साहा भी सम्मिलित थे, रूस और अमेरिका की यात्रा पर गया पर अमेरिका में एटोमिक रिसर्च लेबोर्टरी या एटम बम बनाने के संयत्र को दिखाना कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं था। अमेरिकी सुरक्षा पुलिस इसके लिए पूरी तरह सतर्क थी कि भारतीय

वैज्ञानिक, विशेष रूप से इस विषय के जानकार डा० साहा इस सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त न कर सकें।

जब वैज्ञानिकों का यह शिष्ट मण्डल अमेरिका से लौटने लगा तो दो सुरक्षा अधिकारियों ने डा० साहा को बुलाया और यह जानने का प्रयत्न किया कि उन्हें एटम प्रोजेक्ट का पता तो नहीं लगा है। जब कि उन्हें विश्वास हो गया कि डा० साहा इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते तो पूछताछ बन्द कर दी।

सारी कठिनाइयों के बावजूद डा० नाग चौधरी साइक्लोट्रोन यंत्र के मुख्य पुर्जों को प्राप्त करने में सफल हो गए। इस यंत्र को कलकत्ता में लगाने का कार्य उन्होंने प्रारंभ कर दिया। जो पुर्जे नहीं मिले थे, उनका निर्माण कलकत्ता में होने लगा।

इस प्रकार अनेक कठिनाइयों का सामना करके संकल्प के धनी डा० साहा ने कलकत्ता में साइक्लोट्रोन यंत्र की स्थापना करने में सफलता प्राप्त कर ली।

साइक्लोट्रोन यंत्र द्वारा उत्पादित नकली रेडियो-फास्फोरस और रेडियो कैलशियम का उपयोग

चिकित्सा के लिए हो सकता था । डा० साहा ने इण्डियन स्कूल आफ ट्रोपिकल मैडिसन से सम्पर्क स्थापित किया ताकि कैंसर जैसे तब तक असाध्य रोगों की चिकित्सा में सफलता प्राप्त की जा सके ।

कैंसर के रोगी डा०साहा की प्रयोगशाला में आने लगे । पर एक नई कठिनाई सामने आई । इन रोगियों के रक्त में रोग के कीटाणुओं का पता लगाने के लिए शक्तिशाली माइक्रोस्कोप की आवश्यकता थी । उस समय तक भारत में उपलब्ध अणुवीक्षण (माइक्रो-स्कोप) यंत्रों द्वारा इन रोगों के अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओं को नहीं देखा जा सकता था । वाइरस जैसे कीटाणुओं की उपस्थिति का पता लगाने के लिए इलैक्ट्रोन अणुवीक्षण यंत्र की आवश्यकता थी । यह कीटाणुओं को एक लाख गुना बड़ा करके दिखाता था । इस यंत्र का मूल्य एक लाख रुपए के लगभग था । भारत में इलैक्ट्रोन माइक्रोस्कोप न तो उपलब्ध ही था और न ही कोई उस पर काम करना जानता था ।

पर डा० साहा का जन्म तो जैसे कठिनाइयों पर पार पाने के लिए ही हुआ था । और अन्त में इस

कठिनाई पर भी उन्होंने पार पा ही लिया।

उन्होंने पश्चिमी बंगाल सरकार और कुछ प्रमुख उद्योगपतियों से धन मांगा और एक लाख रुपए जुटा लिए। सच तो यह है कि किसी कार्य की सफलता साधनों पर उतना निर्भर नहीं करती, जितनी कार्य-सिद्धि के दृढ़ निश्चयी महापुरुषों पर।

डा० साहा ने सन् १९४५ ई० में अपने सहयोगी डा० एन० दास गुप्ता को इलैक्ट्रोन माइक्रोस्कोप खरीदने के लिए अमेरिका भेजा। इस प्रकार यह समस्या भी हल हुई।

आणविक भौतिक संस्थान की स्थापना

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद १९५० ई० में डा० साहा ने, कलकत्ता विश्वविद्यालय क्षेत्र में, साइंस कालेज में आणविक भौतिक संस्थान की स्थापना की। इस संस्थान के निदेशन का कार्यभार भी डा० साहा ने ही संभाला। यह डा० साहा की दूर-दृष्टि का परिणाम है कि भारत आज अणु विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति कर सका है। भारत चाहे तो अणु बम भी बना सकता है।

इस संस्थान की स्थापना से भारत को अणु-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने में बड़ी सहायता मिली। डा० साहा का यह कार्य कभी भुलाए नहीं भूलेगा। देश की वैज्ञानिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने में डा० साहा द्वारा संस्थापित अणविक भौतिक संस्थान का स्थान महत्वपूर्ण है। बाद में इस संस्थान का नाम 'साहा इन्स्टीट्यूट आफ न्यूक्लियर फिजिक्स'

हो गया।

इस संस्था का कार्य संचालन करने के साथ-साथ डा० साहा 'इण्डियन' असोसियेशन फार कल्टिवेशन आफ साइंस' के पुनर्गठन में भी लगे रहे। इस संस्था का जादवपुर में भवन बनाने से लेकर प्रयोगशाला को विविध आधुनिक यंत्रों से सुसज्जित करने का कार्य भी डा०साहा के हाथों सम्पन्न हुआ। इस संस्थान के निदेशक का कार्यभार भी उन्होंने संभाला। इसीसे आप उनकी कार्यक्षमता का अनुमान लगा सकते हैं। किसी चली-चलाई संस्था में कार्य करना एक बात है और किसी संस्था को खड़ा करना दूसरी बात। धन जुटाना, उपकरण जुटाना, शोध कार्य का निदेशन करना—इतने सारे काम डा० साहा को करने पड़ते थे।

विज्ञान का लक्ष्य : मानव की सेवा

सभी प्रकार की उन्नति का लक्ष्य है, मनुष्य की सेवा करना। मनुष्य के समय, शक्ति और धन की बचत करना। कुछ लोग एटम बम जैसे संहारक अस्त्रों के कारण विज्ञान का विरोध करते हैं। पर यह उचित नहीं है। इसमें विज्ञान का दोष नहीं, मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति का ही दोष है। परमाणु शक्ति का स्रोत है। उस शक्ति का उपयोग—अच्छा या बुरा—करना मानव के हाथ की बात है। कुआँ शीतल पानी प्राप्त करने के लिए बनाया जाता है। पर यदि कोई कुएं का उपयोग डूब मरने के लिए करे तो इसमें कुआँ बनाने वाले का क्या दोष ! आग से भोजन पकता है। आग से स्टीम तैयार करके बड़े-बड़े इञ्जन चलाए जाते हैं। और भी कितने ही उपयोग आग के हो सकते हैं। पर यदि कोई आग से दूसरे का घर जलाए तो उसे क्या कहा जाए। इस डर से आग का अन्य उपयोगी कार्यों के लिए उपयोग करना छोड़ा तो नहीं जा सकता।

वस्तुतः वैज्ञानिक प्रगति के कारण आज हमें इतनी सारी सुविधाएं उपलब्ध हैं और वे हमारे जीवन में इस तरह घुलमिल गई हैं कि उनकी ओर हमारा ध्यान जाता ही नहीं।

कल्पना कीजिए, इस वैज्ञानिक युग से पहले कैसी परिस्थितियाँ थी। बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी पर लम्बी यात्रा करना कितना कष्टकर, समयसाध्य और खर्चीला था। मार्ग में चोर-डाकुओं और जंगली जानवरों का भय, नदियों, पहाड़ों और रेगिस्तानों की रुकावटें, धूप, वर्षा और ठंड। जितना मार्ग आज हम एक दिन में रेलगाड़ी द्वारा तय कर लेते हैं, उतना महीने भर में तय होता था। जुलाहे की खड्डी और कपड़ा मिल की तुलना कीजिए। पुराने हल और ट्रैक्टर की तुलना कीजिए। नाव और समुद्री जहाज की तुलना कीजिए। सन्देशवाहक के हाथ भेजे सन्देश और हवाई डाक की तुलना कीजिए। ऐक्सरे, रेडियो, टेलीविजन, राकेट के बारे में जरा सोचिए। एक आदमी के मिट्टी हटाने और बुलडोजर की तुलना कीजिये। आज मानव चन्द्रमा पर घूम रहा है। यह सारी विज्ञान की ही देन है। विज्ञान जब मानव की

सेवा में प्रयुक्त होता है तो उसे व्यावहारिक विज्ञान कहते हैं। व्यावहारिक विज्ञान शुद्ध विज्ञान का ही अंग है। शुद्ध विज्ञान की पर्याप्त जानकारी के बिना व्यावहारिक विज्ञान का विकास नहीं होता।

वैज्ञानिक सिद्धान्तों की स्थापना हो जाने पर ही, उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक विज्ञान में लागू किया जाता है। विज्ञान के विकास के साथ ही उद्योग-धन्धों का भी विकास संभव होता है। जो देश विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर चुके हैं, वे समृद्धिशाली हैं और जो वैज्ञानिक प्रगति में पिछड़े हुए हैं, वे सब क्षेत्रों में पिछड़े हुए हैं।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हमारा देश वैज्ञानिक प्रगति में काफी पीछे था। देश के प्रबुद्ध लोग इस स्थिति से चिन्तित थे और इस पिछड़े पन को दूर करना चाहते थे। देश में कुछ-कुछ वैज्ञानिक शोध का कार्य होने तो लगा था पर बिखरा-बिखरा-सा था। इस कार्य का क्षेत्र विश्वविद्यालयों के विज्ञान विभागों तक सीमित था। आवश्यकता इस बात की थी कि इसे सुनियोजित और सुसंगठित रूप दिया जाए। विश्व-विद्यालयों के बाहर के वैज्ञानिकों को भी अनुसंधान

की सुविधाएं उपलब्ध हों।

कृषि के लिए सिंचाई के साधन और उद्योगों के लिए बिजली—दोनों क्षेत्रों में प्रगति के ये महत्त्वपूर्ण साधन हैं। १९३८ ई० में हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने देश की दशा को सुधारने के लिए राष्ट्रीय योजना समिति का निर्माण किया था। स्व० पं० जवाहर-लाल नेहरू उस के अध्यक्ष थे। इस समिति के अन्तर्गत विभिन्न कार्यों के लिए सत्ताईस उपसमितियां बनाई गई थीं और उन में से दो समितियों—बिजली और ईंधन तथा सिंचाई और जलमार्ग के डा० साहा सदस्य थे।

इन्हीं दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया। विदेशी शासक अंग्रेजों ने जान-बूझकर भारत में उद्योगों का विकास नहीं किया था। इस कठिन समय में जब शस्त्रास्त्रों और दूसरी चीजों की भारी आवश्यकता पड़ी और इंगलैंड से समुद्री जहाजों पर लाद कर लाने में कठिनाई अनुभव हुई तो उनका ध्यान इस ओर गया। १९४० ई० में भारत सरकार ने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान समिति की स्थापना की। डा० साहा को इसका सदस्य मनोनीत किया गया। डा० साहा औज़ारों और मशीनों के विकास-कार्य में

जुट गये ।

भारत में अनेक नदियाँ हैं और बरसात में जब इनमें बाढ़ आती है तो जन-धन की अपार क्षति होती है। खड़ी फसलें बह जाती हैं। देश के किसी न किसी भाग में प्रति वर्ष प्रकृति की यह ताण्डव होता ही रहता है। एक ओर तो बाढ़ के पानी से यह अपार विनाश होता है, दूसरी ओर कृषि-भूमि की सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध नहीं होता। बाढ़ के इस अतिरिक्त पानी का यदि सदुपयोग किया जा सकता तो उससे तेहरा लाभ हो सकता था। १. बाढ़ से जन-धन के विनाश की समस्या हल हो सकती थी, २. सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो सकता था, ३. पानी से बिजली उत्पन्न करके उद्योगों के लिए सस्ती और पर्याप्त बिजली उपलब्ध कराई जा सकती थी।

डा० साहा ने इस समस्या के समाधान के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने बाढ़ से उत्पन्न होने वाली विविध समस्याओं की ओर अपने लेखों द्वारा लोगों का ध्यान आकर्षित किया। बंगाल में बाढ़ की समस्या और भी अधिक थी। डा० साहा के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही १९४२ ई० में बंगाल में नदी अनु-

सन्धान संस्थान की स्थापना संभव हुई। डा० साहा के ही प्रयत्नों से दामोदर नदी पर बाँध बांधने की योजना बन सकी और इस बाँध के फल स्वरूप वे तीनों लाभ प्राप्त हुए जिनकी पीछे चर्चा कर आए हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डा० साहा के ज्ञान-नेत्रों से इस देश की कोई समस्या ओझल नहीं थी।

□ □ □

वैज्ञानिक अनुसन्धान के संयोजन और संगठन के क्षेत्र में भी डा० साहा का कार्य अविस्मरणीय है।

१९१३ ई०में स्थापित भारतीय विज्ञान काँग्रेस ही इस देश में एकमात्र वैज्ञानिक संस्था थी। १९२५ ई० में डा० साहा इस संस्था की भौतिकी और गणित शाखा के अध्यक्ष रहे थे। वैज्ञानिकों में आपस में विचार विनिमय, एक-दूसरे के अनुसन्धान कार्य से परिचित होना और परस्पर सहयोग बढ़ाना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए डा० साहा ने उत्तर प्रदेश में अकादमी आफ साइंस की स्थापना की। बाद में इस संस्था का नाम बदल कर 'नेशनल अकादमी आफ साइंसेज' कर दिया गया। उक्त संस्था का

स्तर प्रादेशिक था। अब भी एक संस्था की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, जो समूचे देश के वैज्ञानिकों का मंच बन सके। इस दिशा में भी डा० साहा प्रयत्नशील थे। १९३४ ई० में साइंस कॉंग्रेस के समक्ष उन्होंने इस तरह की संस्था की स्थापना का सुझाव रखा। परिणामस्वरूप १९३५ ई० में नेशनल 'इन्स्टीट्यूट आफ साइंस' की स्थापना हुई। स्थापना के समय डा० मेघनाद साहा इस संस्था के उपाध्यक्ष बने और बाद में अध्यक्ष।

अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना में डा० साहा का हाथ रहा है। भारत में विज्ञान-युग का सूत्रपात करने वालों में डा० साहा का नाम सदा आदर के साथ लिया जाएगा। वे प्रेरणा के अजस्र स्रोत थे। वे संस्थाओं के निर्माता, संगठक और संचालक सभी कुछ थे।

जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से वापस कलकत्ता विश्वविद्यालय में आए तो उन्होंने 'इण्डियन असोसियेशन फार द कल्टीवेशन आफ साइंस' का पुनर्गठन किया। डा० चन्द्रशेखर वेंकट रामन इसके मंत्री थे और बाद में अध्यक्ष बने।

यह संस्था इसके संस्थापक महेन्द्रलाल सरकार के घर में ही स्थित थी। विकासशील इस संस्था के लिए यह स्थान न तो उपयुक्त था और न पर्याप्त ही। डा० साहा ने बंगाल सरकार और केन्द्रीय सरकार से इस संस्था की सहायता करने का अनुरोध किया। और अन्त में उन्हें सफलता मिल ही गई। दस एकड़ ज़मीन और साढ़े तीन लाख रुपए प्रति वर्ष अनुदान की स्वीकृति मिल गई। जादवपुर में नया भवन बन जाने पर एसोसियेशन का काम वहाँ होने लगा।

१९५३ ई० में भारत सरकार ने डा० साहा को साइंस एसोसियेशन का डायरेक्टर नियुक्त किया और वे अन्त तक इस पद पर कार्य करते रहे। डा० साहा के संचालकत्व में साइंस एसोसियेशन ने आशातीत उन्नति की। नए-नए उपकरणों से प्रयोगशाला को सुसज्जित किया गया और अधिकाधिक अनुसन्धान-कर्त्ताओं की नियुक्ति की गई। डा० साहा ने एसोसि-येशन के विकास की एक पंचवर्षीय योजना बनाकर भारत सरकार को प्रस्तुत की। स्वतंत्र भारत की सरकार ने वैज्ञानिक प्रगति के महत्त्व को समझते हुए पचास लाख रुपए इस पंचवर्षीय योजना के लिए

अनुदान के रूप में दिए।

वैज्ञानिकों के लिए संस्थाओं की स्थापना करने के पश्चात डा० साहा निश्चिन्त होकर नहीं बैठ गए। वे जानते थे कि जब तक जन-साधारण में वैज्ञानिक चेतना उत्पन्न नहीं होती, वैज्ञानिक उपलब्धियों का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'साइंस एण्ड कल्चर' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्रिका का उद्देश्य था—वैज्ञानिक विचारों और उपलब्धियों को सरल भाषा में सर्व साधारण तक पहुंचाना। डा० साहा स्वयं भी इस पत्रिका में लिखते और दूसरों को भी लिखने के लिए प्रेरित करते।

डा० साहा बहुमुखी प्रतिभा के धनी वैज्ञानिक थे। उनका कार्य-क्षेत्र वैज्ञानिक प्रयोगशाला तक सीमित नहीं था। सारा देश और देश का जनसाधारण-उनकी सेवा की परिधि में आता था। वे समूचे भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसर देखना चाहते थे। वे जीवन भर अपने इस स्वप्न को साकार करने में लगे

रहे और इसी स्वप्न को कार्यरूप में प्रत्यक्ष किया। वे प्रेरणा के पुंज थे। जो भी उनके सम्पर्क में आता, उसे वे राष्ट्र-सेवा के मंत्र की दीक्षा देते। उन्होंने न केवल सरकार को इस कार्य के लिये प्रेरित किया अपितु उद्योगपतियों और पूंजीपतियों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया।

यह डा० साहा ही थे जिनके प्रयत्नों से भारत सरकार ने ज्योतिष सम्बन्धी विषयों पर परामर्श देने के लिए 'स्टैंडिंग एडवाइज़री बोर्ड आफ एस्ट्रानोमी' की स्थापना की। डा० साहा इस बोर्ड के प्रमुख सदस्य थे। उन्हीं के प्रयत्नों से भारतीय पंचाग सुधार समिति का गठन हुआ। इस समिति के निर्णय के अनुसार भारत सरकार ने भारतीय सौर वर्ष तथा शक संवत् को राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की। खगोल सम्बन्धी अध्ययन के लिए डा० साहा के प्रयत्नों से उपकरणों से सुसज्जित एक वेधशाला की स्थापना की स्वीकृति भी भारत सरकार ने दी थी।

यद्यपि डा० साहा देश के प्रमुख वैज्ञानिक थे और उनका जीवन विज्ञान-साधना को समर्पित था और इसके लिए उन्होंने जो-जो कार्य किए उनका संक्षिप्त

परिचय पिछले पृष्ठों में दिया गया है, पर वे क्षण भर को भी यह नहीं भूलते थे कि विज्ञान-साधना का उद्देश्य मानव सेवा है। उनका जीवन-लक्ष्य मानव की सेवा था। विज्ञान तो इस सेवा का साधन मात्र था।

दीन-दुखियों की सहायता-सेवा करने की प्रवृत्ति डा० साहा में छात्रावस्था से ही विद्यमान थी। १९१३ ई. में दामोदर नदी में अभूतपूर्व बाढ़ आई थी। उस समय मेघनाद साहा एम. एस-सी. के छात्र थे। हजारों-लाखों लोग उस समय बेघर हो गए थे। राष्ट्रीय नेताओं ने इन उजड़े लोगों की सेवा-सहायता के लिए बाढ़ सहायता कमेटी की स्थापना की थी। राष्ट्रीय नेताओं के आह्वान पर साहा ने स्वयंसेवक के रूप में उस समय बड़ा कार्य किया था। इसके पश्चात् १९४३ में फिर दामोदर नदी में बाढ़ आई। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए संस्था संगठित की। डा. साहा ने उस समय तेईस लाख रुपए बाढ़ पीड़ितों के लिए एकत्र किए थे। इसी प्रकार भारत विभाजन के समय विस्थापितों के पुनर्वास के लिए भी उन्होंने अथक प्रयत्न किया था।

डा. साहा नवयुवक वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन देने और उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए भी प्रयत्नशील रहते थे। यद्यपि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार देश की समस्याओं के समाधान के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थी और विज्ञान की उन्नति के लिए भी प्रयत्नशील थी पर अंग्रेजों द्वारा स्थापित दफ्तरशाही और लाल फीता शाही ज्यों की त्यों थी। इसके कारण पग-पग पर अड़चनें आती थीं और समय, शक्ति तथा साधनों का अपव्यय होता था। प्रत्येक योजना को कार्यान्वित करने में बिलम्ब होता था। फायलें सरकारी दफ्तरों में एक मेज़ से दूसरी मेज़ पर घूमती रहतीं और महीनों का काम वर्षों में होता। डा० साहा इस पुरानी व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे पर सरकार थी कि टस से मस नहीं होती थी।

डा० साहा की देश-भक्ति का प्रमाण तो उनके मिडिल स्कूल में पढ़ते समय, बंगाल-विभाजन के समय मिल ही गया था। उन्होंने स्कूल में हड़ताल में भाग लिया था और स्कूल से निकाल दिए गए थे। पर वे गाँधीवादी उपायों के समर्थक नहीं थे। गान्धी जी चर्खे और खादी की बात करते थे और डा० साहा देश के

औद्योगीकरण और मशीनीकरण के पक्षपाती थे। डा० साहा यद्यपि राजनीति में प्रवेश करने के लिए उत्सुक नहीं थे पर यह भी अनुभव करते थे कि राजनीति से दूर रहकर सरकारी तंत्र में अपेक्षित सुधार नहीं किया जा सकता। उनके मित्रों ने भी उन्हें यह सलाह दी कि आप लोक-सभा का चुनाव लड़िये और लोक सभा के माध्यम से अपनी बात सरकार के कानों तक सशक्त ढंग से पहुंचाइए। विज्ञान, शिक्षा और आयोजन का डा० साहा को विशिष्ट ज्ञान था और उस ज्ञान का लाभ समूचे राष्ट्र को पहुंचाने के लिए लोकतांत्रिक देश में लोक सभा सबसे प्रबल स्थान था। डा० साहा १९५२ ई० के आम चुनावों में निर्दलीय सदस्य के रूप में लोक सभा के लिए खड़े हुए और जनता ने उन्हें अपना प्रतिनिधि चुन लिया।

लोक सभा के सदस्य के रूप में भी डा० साहा ने प्रशंसनीय कार्य किया। किन्तु जब वे सरकारी तंत्र और योजनाओं की तीखी और सच्ची आलोचना करते तो सरकारी पक्ष तिलमिला उठता।

फरवरी, १९५६ में डा० साहा लोक सभा के बजट अधिवेशन में भाग लेने के लिए दिल्ली आए। वे कई

महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर लोक सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे। पूर्वी बंगाल से आए शरणार्थी नौ वर्ष का समय बीत जाने पर भी बुरी दशा में पड़े हुए थे। पूर्वी बंगाल(पाकिस्तान)से शरणार्थियों का आना अब भी जारी था। बेकारी दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। कामगरों की छटनी हो रही थी और पंचवर्षीय योजना को ठीक से कार्यान्वित नहीं किया जा रहा था। लाल फीताशाही का सरकारी दफ्तरों में बोल-बाला था।

पिछले पांच-छः वर्षों से डाक्टर साहा का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। हाई ब्लड प्रैशर के अतिरिक्त आंशिक पक्षाघात के वे रोगी थे। इस पर भी वे पहले की ही तरह कार्य-व्यस्त रहते थे। पूर्वी भारत के विस्थापितों की दुर्दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने का वे लगातार प्रयत्न कर रहे थे। बंगाल, आसाम और त्रिपुरा के शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए वे चिन्तित थे और उन से सम्पर्क बनाए हुए थे।

१६ फरवरी, १९५६ को वे कुछ महत्वपूर्ण कागज-पत्र हाथ में लिए पार्लमेंट के पास जा रहे थे कि चलते-चलते गिर पड़े। वहां राह चलते लोगों

की भीड़ इकट्ठी हो गई। भीड़ में से किसीने उन्हें पहचान लिया। उन्हें हस्पताल पहुंचाया गया पर तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका था। उनकी मृत्यु का समाचार तुरन्त सारे देश में फैल गया।

१६ फरवरी, १९५६ को वसन्त पंचमी (सरस्वती पूजा)का त्योहार देश भर में मनाया जा रहा था। पर सरस्वती के इस वरद्-पुत्र के निधन का समाचार मिलते ही सब शोक-मग्न हो गए।

'कठिनाइयों दुःखों का इतिहास ही सुयश है।'

कवि की यह पंक्ति डा० साहा के जीवन पर पूरी तरह लागू होती है।

□□□